

विकसित भारत निर्माण की दिशा में दलित विमर्श का योगदान

हंसराज

पीएच.डी. स्कॉलर, विषय हिन्दी, टांटिया यूनिवर्सिटी,
श्रीगंगानगर

‘दलित’ शब्द का अर्थ है वे लोग जिनके साथ गलत व्यवहार किया गया है और जिनके अधिकार छीन लिए गए हैं। भारत में दलित अनुसूचित जाति नामक समूह का हिस्सा हैं। इस समूह में हिंदू, मुस्लिम और ईसाई जैसे विभिन्न धर्मों के लोग शामिल हैं। बहुत समय पहले, इस समूह के कई लोगों को ‘अछूत’ कहा जाता था क्योंकि दूसरों को लगता था कि वे इतने अच्छे नहीं हैं कि उन्हें छुआ जाए या उनकी मदद की जाए। दलित समुदाय ने बहुत सी कठिनाइयों का सामना किया है।

लंबे समय तक, भारत में लोग ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र जैसे जातियों नामक विभिन्न समूहों में विभाजित थे। इस विभाजन ने लोगों के लिए दोस्त बनना और साथ मिलकर काम करना मुश्किल बना दिया। सबसे निचले समूह, शूद्रों को स्कूल जाने या सीखने की अनुमति नहीं थी, और वे महत्वपूर्ण समारोहों में भाग नहीं ले सकते थे। इसके बजाय, उन्हें दूसरे समूहों के लिए काम करना पड़ता था। इस अनुचित व्यवहार के कारण, उनका जीवन बहुत कठिन और दुखी था।

हिंदी में दलित साहित्य की शुरुआत दलितों द्वारा अधिकारों के लिए की गई कड़ी मेहनत और लड़ाई के कारण हुई, जो एक ऐसे समूह से हैं जिसने बहुत अधिक अनुचित व्यवहार का सामना किया है। वे समझने लगे कि वे क्या पाने के हकदार हैं और एक बेहतर समाज बनाना चाहते थे। इसके लिए एक बड़ी प्रेरणा डॉ. अंबेडकर थे, जिन्होंने दलित लेखकों को बेहतर बनने और आगे बढ़ने के लिए प्रोत्साहित किया। निष्पक्षता और सभी की मदद करने के उनके विचारों ने दलित साहित्य को आकार दिया और इसे अपनी अनूठी शैली बनाने में मदद की।

दलित विमर्श जाति आधारित अस्मिता मूलक विमर्श है। इसके केंद्र में दलित जाति के अंतर्गत

शामिल मनुष्यों के अनुभवों, कष्टों और संघर्षों को स्वर देने की संगठित कोशिश की गई है। यह एक भारतीय विमर्श है क्योंकि जाति भारतीय समाज की बुनियादी संरचनाओं में से एक है। इस विमर्श ने भारत की अधिकांश भाषाओं में दलित साहित्य को जन्म दिया है। हिंदी में दलित साहित्य के विकास की दृष्टि से बीसवीं सदी के अंतिम दो दशक बहुत महत्वपूर्ण हैं। भारतीय समाज आदिकाल से ही वर्ण व्यवस्था द्वारा नियंत्रित रहा है। जो वर्ण व्यवस्था प्रारंभ में कर्म पर आधारित थी कालान्तर में जाति में परिवर्तित हो गई।

भारतीय समाज में दलित वर्ग के लिए अनेक शब्द प्रयोग में लाये जाते रहे हैं जैसे – शूद्र, अछूत, बहिष्कृत, अंत्यज, पददलित, दास, दस्यु, अस्पृश्य, हरिजन, चांडाल आदि। दलित शब्द का शब्दिक अर्थ है – मसला हुआ, रोंदा या कुचला हुआ, नष्ट किया हुआ, दरिद्र और पीड़ित, दलित वर्ग का व्यक्ति।

मानव समाज में हर वह व्यक्ति या वर्ग दलित है जो कि किसी भी तरह के शोषण व अत्याचार का शिकार है।

इसके अतिरिक्त माना गया कि— सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, धार्मिक या आर्थिक या फिर अन्य मानवीय अधिकारों से वंचित, वह वर्ग जिसे न्याय नहीं मिल सका, दलित है।

वाल्मीकि के अनुसार दलितों द्वारा लिखा जाने वाला साहित्य ही दलित साहित्य है। उनकी मान्यतानुसार दलित ही दलित की पीड़ा को बेहतर ढंग से समझ सकता है और वही उस अनुभव की प्रामाणिक अभिव्यक्ति कर सकता है। इस आशय की पुष्टि के तौर पर रचित अपनी आत्मकथा जूठन में उन्होंने वंचित वर्ग की समस्याओं पर ध्यान आकृष्ट किया है।

दलित विमर्श आज के युग का एक ज्वलंत मुद्दा है। भारतीय साहित्य में इसकी मुखर अभिव्यक्ति हो रही है। दलित साहित्य को लेकर कई लेखक संगठन बन चुके हैं और आज यह एक आंदोलन का रूप लेता

जा रहा है। स्वाभाविक रूप से साहित्य, समाज और राजनीति पर इसका व्यापक असर पड़ रहा है

दलित आन्दोलन दलित साहित्य का वैचारिक आधार है डॉ. अंबेडकर का जीवन-संघर्ष ज्योतिबा फुले तथा महात्मा बुद्ध का दर्शन उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि हैं। सभी दलित रचनाकार इस बिन्दु पर एकमत हैं कि ज्योतिबा फुले ने स्वयं क्रियाशील रहकर सामंती मूल्यों और सामाजिक गुलामी के विरोध का स्वर तेज किया था। ब्राह्मणवादी सोच और वर्चस्व के विरोध में उन्होंने आंदोलन खड़ा किया था। यही कारण है कि जहाँ दलित रचनाकारों ने ज्योतिबा फुले को अपना विशिष्ट विचारक माना वही डॉ. अंबेडकर को अपना शक्तिपुंज स्वीकार किया।

डॉ. अंबेडकर ने अनेक स्थलों पर जोर देकर कहा है कि दलितों का उत्थान राष्ट्र का उत्थान है। दलित चिंतन में राष्ट्र पूरे भारतीय परिवार या कौम के रूप में है जबकि ब्राह्मणों के चिंतन में राष्ट्र इस रूप में मौजूद नहीं है। उनके यहाँ एक ऐसे राष्ट्र की परिकल्पना है, जिसमें सिर्फ द्विज हैं। यहाँ न दलित हैं, न पिछड़ी जातियां हैं और न अल्पसंख्यक वर्ग है। इसलिए हिन्दू राष्ट्र और हिंदू राष्ट्रवाद दोनों खंडित चेतना के रूप में हैं।

दूसरे शब्दों में वर्ण व्यवस्था ही हिंदू राष्ट्र का मूलाधार है। इसीलिए कंवल भारती के शब्दों में दलित मुक्ति का प्रश्न राष्ट्रीय मुक्ति का प्रश्न है। करोड़ों लोगों के लिए अलगवाद का जो समाजशास्त्र और धर्मशास्त्र ब्राह्मणों ने निर्मित किया, उसने राष्ट्रीयता को खंडित किया था और उसी के कारण भारत अपनी स्वाधीनता खो बैठा था।

दलित चिंतकों ने इतिहास की पुनर्व्याख्या करने की कोशिश की है। इनके अनुसार गलत इतिहास – बोध के कारण लोगों ने दलितों और स्त्रियों को इतिहास – हीन मान लिया है, जबकि भारत के इतिहास में उनकी भूमिका महत्वपूर्ण है। वे इतिहासवान हैं। सिर्फ जरूरत दलितों और स्त्रियों द्वारा अपने इतिहास को खोजने की है।

डॉ. अंबेडकर पहले भारतीय इतिहासकार हैं जिन्होंने इतिहास में दलितों की उपस्थिति को रेखांकित किया है। उन्होंने इतिहास लेखन में दो तथ्यों को स्वीकार किए जाने की बात कही है। पहली बात यह कि एक समान भारतीय संस्कृति जैसी कोई चीज कभी नहीं रही और भारत तीन प्रकार का रहा –

ब्राह्मण भारत, बौद्ध भारत और हिन्दु भारत। इनकी अपनी – अपनी संस्कृतियां रही। दूसरी बात यह स्वीकार की जानी चाहिए कि मुसलमानों के आक्रमणों के पहले भारत का इतिहास, ब्राह्मणों और बौद्ध धर्म के अनुयायियों के बीच परस्पर संघर्ष का इतिहास रहा है। जो कोई इन दो तथ्यों को स्वीकार नहीं करता, वह भारत का सच्चा इतिहास जो इस युग के अर्थ और उद्देश्य को स्पष्ट कर सके, कभी नहीं लिख सकता।

दलित विमर्श सबसे प्रखर रूप में दलित आत्मकथाओं के रूप में सामने आया। दलित साहित्यकारों ने अपनी ही कहानी और अपने अनुभव के माध्यम से दलित उत्पीड़न और दलित संघर्ष को रेखांकित किया।

ओमप्रकाश बात्मिकी की जूठन पहली दलित आत्मकथा है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भी दलितों को शिक्षा प्राप्त करने के लिए जो एक लंबा संघर्ष करना पड़ा, शूठनर इसे गंभीरता से उठाती है। इसमें चित्रित दलितों की वेदना और उनका संघर्ष पाठक की संवेदना से जुड़कर मानवीय संवेदना को जगाने की कोशिश करते हैं।

तुलसी राम की आत्मकथा 'मुर्दहिया' एवं मणिकर्णिका पूर्वी उत्तर प्रदेश के ग्रामीण अंचल में शिक्षा के लिए जूझते एक दलित की मार्मिक अभिव्यक्ति है साथ ही हाल ही के वर्षों में डॉ. श्योराज सिंह शबेचौनर की आत्मकथा शमेरा बचपन मेरे कंधों पर प्रकाशित हुई है जिसमें एक दलित बालक के बचपन का गला बहुत ही बेरहमी से घोटने का प्रयास किया गया, लेकिन लेखक का बाल-मन डरा नहीं जुटा रहा शिक्षा की लड़ाई के लिए।

दलित कहानियों में सामाजिक परिवेशगत पीड़ाएं, शोषण के विविध आयाम खुल कर और तर्क संगत रूप से अभिव्यक्त हुए हैं। ग्रामीण जीवन में अशिक्षित दलित का जो शोषण होता रहा है, वह किसी भी देश और समाज के लिए गहरी शर्मिंदगी का सबब होना चाहिए था।

'पच्चीस चौका डेढ़ सौ' कहानी में इसी तरह के शोषण को जब पाठक पढ़ता है, तो वह समाज में व्याप्त शोषण की संस्कृति के प्रति गहरी निराशा से भर उठता है। ब्याज पर दिए जाने वाले हिसाब में किस तरह एक सम्पन्न व्यक्ति, एक गरीब दलित को ठगता है और एक झूठ को महिमा-मण्डित करता है, वह पाठक की संवेदना को झकजोर कर रख देता है।

आधुनिक भारत में सामाजिक न्याय की स्थापना व दलित वर्गों के उत्थान के प्रति प्रतिबद्धता के प्रतीक के रूप में डॉ. भीमराव अम्बेडकर का नाम लिया जाता है। अम्बेडकर सामाजिक न्याय के उत्कट सेनानी थे। उन्होंने दलित वर्गों के उत्थान और उनके लिए जीवन की न्याय – सम्मत और सम्मानजनक दशाएँ सुनिश्चित करने के अभियान के प्रति अपना जीवन समर्पित कर दिया। उन्होंने वैचारिक स्तर पर ही सामाजिक एवं आर्थिक न्याय की आवश्यकता का प्रतिपादन नहीं किया, अपितु भारतीय समाज में विद्यमान अन्याय के निराकरण के लिए संघर्ष में सक्रिय रूप से भाग लिया।

स्वयं अस्पृश्य होने के कारण अनेक अवसरों पर हिन्दुओं के हाथों सहने पड़े अपमानों और यातनाओं ने उनके मन में हिन्दू – धर्म और सवर्णों के प्रति कटुता और विद्वेष उत्पन्न कर दिया था। इस कारण उनके विचारों में एक सीमा तक कड़वाहट अवश्य आ गई। यह कड़वाहट हिन्दू धर्मशास्त्रों की उनके द्वारा की गई एकपक्षीय व अतिवादी व्याख्याओं में भी परिलक्षित होती है। किंतु इस तथ्य की उपेक्षा नहीं की जा सकती कि उन्होंने जातिप्रथा, वर्णव्यवस्था तथा हिंदू धर्म की अनेक अन्याय पूर्ण मान्यताओं के प्रति विद्रोह का जो साहस प्रदर्शित किया, वह आधुनिक युग में उनसे पूर्व कोई भारतीय विद्वान नहीं कर सका था। गरिमा, सामाजिक और आर्थिक न्याय तथा समता व्यक्ति की स्थापना प्रति भारत के संविधान में व्यक्त हुआ संकल्प, संविधान के निर्माण की प्रक्रिया में डॉ. अम्बेडकर के निर्णायक प्रभाव का परिणाम है।

अम्बेडकर समाज में से अन्याय दमन और उत्पीड़न के उन्मूलन को भारत की राजनैतिक स्वतंत्रता की तुलना को अधिक महत्व प्रदान करते थे। इस कारण उनके आलोचक उनके राष्ट्रवाद में संदेह करते हैं। किंतु अम्बेडकर की देश – भक्ति में संदेह करना वस्तुतः उनके प्रति अन्याय है।

यह सत्य है कि कांग्रेस और गांधी के अनेक कार्यक्रमों के प्रति उनकी सहमति नहीं थी। उन्होंने अपने इस मन्तव्य को कभी छुपाया नहीं कि राजनैतिक स्वतंत्रता भारत के लिए तब तक महत्वहीन है जब तक कि दलित वर्गों को समाज की मुख्य धारा में सम्मिलित कर उन्हें राजनैतिक आर्थिक व सामाजिक शक्ति में समकक्ष भागीदार नहीं बनाया जाता किंतु अम्बेडकर ने न तो भारत की राजनैतिक स्वतंत्रता के

प्रश्न की उपेक्षा की, न ही उन्होंने ब्रिटिश सरकार के प्रति निष्ठा का भाव व्यक्त किया।

दलितों के उत्थान के प्रति ब्रिटिश सरकार की उदासीन नीति का उन्होंने कठोर आलोचना की। अम्बेडकर मानव अधिकारों के महान समर्थक थे। उन्होंने व्यक्ति के अनुल्लंघनीय अधिकारों की सांविधानिक उद्घोषणाओं व अधिकारों के अतिक्रमण के विरुद्ध कानूनी उपचारों को सुनिश्चित करने तथा ऐसी उपयुक्त सामाजिक व आर्थिक परिस्थितियों के निर्माण को महत्वपूर्ण माना जिनमें कि व्यक्ति के अधिकार सुरक्षित रह सकें। वे वास्तविक अर्थ में संविधावादी थे तथा राज्य की शक्ति को मर्यादित करने के पक्ष में थे।

भारत के संविधान में उदारवादी लोकतंत्र के प्रति आस्था, सामाजिक व आर्थिक न्याय तथा धर्म निरपेक्षता के आदर्शों के प्रति प्रतिबद्धता, संविधान के निर्माण पर अम्बेडकर के उदारवादी व्यक्तित्व के प्रभाव को परिलक्षित करते हैं।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. ओमप्रकाश वाल्मीकी, (1999), जूठन, राधाकृष्णन प्रकाश लि.
2. डॉ. भीमराव अम्बेडकर, (2018), जाति का विनाश, फारवर्ड प्रैस, प्रथम संस्करण
3. इन्तिजार नईम, (2017), दलित समस्या : जड़ में कौन, मधुर संदेश संगम, प्रथम संस्करण
4. गिरिराज सहारण, (2017), दलित जीवन की कहानियाँ, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली
5. डॉ. निधी यादव, (2023), दलित विमर्श : समस्या एवं समाधान के बदलते स्वरूप, ब्ल्यू बक प्रकाशन, प्रथम संस्करण
6. विवेक कुमार, (2023), कमजोर वर्ग का समाजशास्त्र : दलित, जनजाति समाज एवं महिलाएं, रावत पब्लिकेशन
7. रमणिका गुप्ता (सं.), (2014), दलित चेतना कहानी, नवलेखन प्रकाशन, हजारी बाग, झारखण्ड
8. रत्नकुमार सांभरिया, (2011), दलित समाज की कहानियाँ, अनामिका प्रकाशन, नई दिल्ली
9. माता प्रसाद, (), दलित साहित्य में प्रमुख विधाएँ, सम्यक् प्रकाशन, नई दिल्ली
10. ओमप्रकाश वाल्मीकि, (2001), दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, राधाकृष्णन प्रकाशन, नई दिल्ली
11. कैवल भारती, (2012), दलित निर्वाचित कविताएँ, इतिहास बोध प्रकाशन, इलाहाबाद
- 12- जयप्रकाश कर्दम, (2022), इक्कीसवीं सदी में दलित आन्दोलन, पंकज पुस्तक मन्दिर, दिल्ली